[1994] 4 उम० नि० प० 611

ग्राहक संस्था मंच और अन्य

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

27 अप्रैल, 1994

मु० न्या० एम० एन० वेंकटचलैया, न्या० जे० एस० वर्मा, न्या० पी० बी० सावंत, न्या० एस० सी० अग्रवाल और न्या० एस० पी० भरूचा।

बांबे लैंड रिक्वीजीशन ऐक्ट (मुंबई भूमि अधिग्रहण अधिनियम), 1948—धारा 4(1), 4(3), 4(5), 5(1), 6(3), 9 और 9(2क)—परिसरों का 45 से भी अधिक वर्षों पूर्व अधिगृहीत किया जाना—परिसरों का विभिन्न सहकारी सोसाइटियों के अधिभोग में होना—राज्य सरकार द्वारा अधिभोगियों को परिसर खाली करने का नोटिस दिया जाना जिससे कि उन्हें अधिग्रहण से मुक्त किया जा सके—अधिग्रहण की संकल्पना—अर्जन की संकल्पना—दोनों संकल्पनाएं परस्पर भिन्न हैं—एक के मामले में संपत्ति का स्वत्व अर्जन प्राधिकारी को अंतरित हो जाता है और दूसरे के मामले में स्वत्व तो स्वामी के पास बना रहता है किंतु संपत्ति का कब्जा अधिग्रहण प्राधिकारी द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है—अधिग्रहण किसी भी उचित अवधि तक सतत बनाए रखा जा सकता है किंतु यह बात कि ऐसी उचित अवधि कितनी हो, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी और उसका विनिश्चय सरकार करेगी—अधिभोगियों को निदेश दिया गया कि वे 30-11-1994 तक परिसरों का कब्जा राज्य सरकार को दे दें।

इस मामले में दो प्रकार के आबंटित हैं—(क) उपभोक्ता सहकारी सोसाइटियां, जिन्हें उचित दर दुकानें चलाने के लिए परिसर आबंटित किए गए हैं और (ख) वे व्यक्ति जिन्हें परिसर आबंटित किए गए हैं। जो व्यक्ति उचित दर दुकानें चला रहे हैं, अधिकांशतः मध्यम और निम्न आय वर्ग के व्यक्ति हैं। आबंटिती सहकारी सोसाइटियां काफी बड़ी संख्या में कर्मचारियों को भी नियोजित करती हैं। भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति को लिखे गए पत्र के परिणामस्वरूप 1986 की रिट याचिका संख्या 404 का उद्भव हुआ। उक्त रिट याचिका के संबंध में न्यादेश जारी किया गया और उसे सुनवाई के लिए पांच न्यायाधीशों वाली न्यायपीठ के यहां निर्देशित कर दिया गया। इस प्रकार यह रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए आई। इस रिट याचिका में वस्तुतः यह ईप्सा की गई है कि एच० डी० वोहरा **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [1984]3 उम० नि० प० 965 : (1984)2 एस० सी० सी० 337, वाले मामले में के विनिश्चय पर पुनर्विचार किया जाए। विनिश्चय का पुष्टीकरण करते हुए तथा रिट याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित—इस बाबत कोई शंका नहीं की जा सकती कि वह लोक प्रयोजन, जिसके लिए अधिग्रहण का आदेश किया गया है, चाहे जो कुछ हो अधिग्रहण के आदेश को तीस वर्ष जितनी लम्बी अवधि तक अयुक्तियुक्त रूप से जारी नहीं रखा जा सकता। (पैरा 4)

1994(4) eILR(PAT) SC 1

प्रसामान्यत: "अधिग्रहण" शब्द का अर्थ है—संपत्ति को किसी सीमित अवधि के लिए कब्जे में लेना जो कब्जा संपत्ति के अर्जन से भिन्न होता है। इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए कि अमुक मामले में शक्ति का वस्तुत: दुरुपयोग किया गया है, इस प्रसिद्ध अर्थ का ध्यान रखा जाना है। अधिग्रहण और अर्जन के आदेशों के परिणाम अलग-अलग प्रकार के होते हैं। उक्त दोनों संकल्पनाएं परस्पर भिन्न हैं। एक के मामले में संपत्ति का स्वत्व अर्जन प्राधिकारी को अंतरित हो जाता है और दूसरे के मामले में स्वत्व तो स्वामी के पास बना रहता है किंतु संपत्ति का कब्जा अधिग्रहण प्राधिकारी द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है (पैरा 8)

अधिग्रहण का आशय किसी स्थायी लोक प्रयोजन के लिए, उदाहरणार्थ उस प्रयोजन के लिए स्थायी परिसर, उपलब्ध कराने के लिए, अपेक्षित समय तक के लिए लेना पड़ सकता है। अर्जन और अधिग्रहण की संकल्पनाएं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न संकल्पनाएं हैं जहां तक उनसे नि:सृत होने वाले परिणामों का संबंध है। वस्तुत: किसी मकान-मालिक को संपत्ति के प्रति उसके अधिकार और स्वत्व से, सम्यक प्रतिकर का संदाय किए बिना, वंचित नहीं किया जा सकता, और दीर्घकालिक अधिग्रहण की परिणति इसी परिणाम में होती है। अधिग्रहण किसी उचित अवधि तक ही चालू रखा जा सकता है; और यह बात, ऐसी उचित अवधि कितनी हो, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है और इसका विनिश्चय साधारणत: सरकार करेगी। (पैरा 16)

उपर्युक्त कारणों की वजह से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि एच० डी० वोहरा वाले मामले में किए गए विनिश्चय पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, यह न्यायालय उसमें की गई इस आशय की मताभिव्यक्तियों का अनुमोदन नहीं करता कि उक्त अधिनियम के अधीन, किसी स्थायी प्रयोजन के लिए अधिग्रहण का आदेश पारित नहीं किया जा सकता। यह न्यायालय बात को स्पष्ट किए देता है कि उक्त विनिश्चय यह अधिकथित नहीं करता कि कोई अधिग्रहण आदेश 30 वर्ष तक जारी रह सकता है जैसी कि दलील दी गई है। विनिश्चय में 30 वर्ष की अवधि का उल्लेख उससे सम्बद्ध अधिग्रहण आदेश की तारीख के संदर्भ में किया गया था। अधिग्रहण का कोई आदेश उचित अवधि तक चालू रह सकता है और यह अभिनिर्धारित किया गया, जैसा कि यह न्यायालय अभिनिर्धारित कर रहा है कि अधिग्रहण आदेश का 30 वर्ष जितनी लंबी अवधि तक जारी रहना उचित नहीं था। (पैरा 17)

बंबई में और महाराष्ट्र के अन्य बड़े नगरों में अनुकल्पी आवास तलाश करने की सर्वविदित कठिनाई का ध्यान रखते हुए इन अंतरिम आदेशों का संरक्षण 30 नम्बर, 1994 तक जारी रखा जाता है जिस तारीख को उन परिसरों के सभी अधिभोगी, जिनका सतत अधिग्रहण उपर्युक्त रीति में अभिखंडित कर दिया गया है, परिसरों को खाली करने और उनका खाली कब्जा राज्य सरकार को सौंपने के लिए बाध्य होंगे जिससे कि राज्य सरकार 31 दिसम्बर, 1994 को अथवा उससे पूर्व ऐसे परिसरों को अधिग्रहण मुक्त करके उनका खाली कब्जा मकान मालिकों को हस्तांतरित कर सके। (पैरा 20)

अनुमोदित निर्णय

पैरा

[1984] [1984] 3 उम० नि० प० 955=(1984) 2 एस० सी० सी० 337 :
एच० डी० वोहरा बनाम महाराष्ट्र राज्य। 1, 8, 11, 20

निर्दिष्ट निर्णय

[1968] (1968)1 एस० सी० आर० 40 :
कलेक्टर आफ अकोला और अन्य बनाम रामचंद्र और अन्य; 7, 8, 11, 16

[1955] (1955)2 एस० सी० आर० 777 :
स्टेट ऑफ बोम्बे बनाम भांजी मुंजी; 6, 11

[1955] आई० एल० आर० 1955 नागपुर 34 :
मांगी लाल कारबा बनाम मध्य प्रदेश राज्य। 8

रिट अधिकारिता : संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई 1993 की रिट याचिका (सिच) सं० 53 जिसके साथ सिविल रिट (सिच) याचिका सं० 404/86 और 27/94 का निपटारा किया गया।

याची की ओर से रिट याचिका सं० 5393 में — ज्येष्ठ अधिवक्ता सर्वश्री वी०एम० तारकुंडे और वी० एन० गणपुले और उनके साथ सर्वश्री उमेश भागवत और वी० बी० जोशी जो रिट याचिका (सि०) सं० 1023/86 में के याची की ओर से भी अधिवक्ता है

याची की ओर से रिट याचिका (सि०)सं० 404/86 में — श्रीमती इंदिरा जयसिंह, ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री आर० एन० केशवानी, तथा उसके साथ श्री बी० वाई० कुलकर्णी और सुश्री अपर्णा भाट

याची की ओर से रिट याचिका (सि०) सं० 27/94 में — सर्वश्री एफ० एस० नरीमन, एक्स जोसेफ, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ सर्वश्री विजय कुमार मेहता, पवन के० बहल और मिथिलेश कुमार सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से रिट याचिका (सि०) सं०53/93, 1023/86, 404/86, 2794 में — सर्वश्री एस० के० ढोलकिया और ए० एस० भस्मे

1994(4) eILR(PAT) SC 1

प्रत्यर्थी सं० 3-4 की ओर से	सर्वश्री आर० एफ० नरीमन, कीर्ति धमानी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ सर्वश्री अनिप सचदे, एच० मुंशी, विद्या सागर
प्रत्यर्थी सं० 2-3 की ओर से	सर्वश्री सोली जे० सोराबजी और उनके साथ सर्वश्री पी० एच० पारेख, एस० फजल
प्रत्यर्थी सं० 4-5 की ओर से	सर्वश्री कृष्णन महाजन और पी० एच० पारेख
मध्यक्षेपी की ओर से	सर्वश्री वाई० अध्यारू और के० वी० श्री कुमार

न्यायालय का निर्णय न्या० एस० पी० भरूचा ने दिया।

न्या० भरूचा—भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायमूर्ति को लिखे गए एक पत्र के परिणामस्वरूप 1986 की रिट याचिका (सिविल) सं० 404, अर्थात् प्रेसिडेंट, एसोसिएशन आफ अलाटीज आफ रिक्वीजीशंड प्रेमिसेज बांबे **बनाम** महाराष्ट्र राज्य, का उद्‌भव हुआ। उस पत्र को रिट याचिका मानकर तदनुसार संख्यांकित कर दिया गया। तत्पश्चात् 21 जुलाई, 1986 को रिट याचिका के संबंध में न्यादेश जारी किया गया और उसे सुनवाई के लिए पांच न्यायाधीशों वाली न्यायपीठ के यहां निर्देशित कर दिया गया। इस प्रकार यह रिट याचिका हमारे पास सुनवाई के लिए आई है। इस रिट याचिका में वस्तुत: यह ईप्सा की गई है कि **एच० डी० वोहरा बनाम महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में के, जिसे इस न्यायालय के दो विद्वान न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने विनिश्चित किया था, विनिश्चय पर पुनर्विचार किया जाए।

2. जबकि उपर्युक्त रिट याचिका का संबंध मुंबई भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1948 (जिसे इसमें आगे उक्त अधिनियम कहा गया है) के अधीन रिहाइश के प्रयोजनार्थ अध्यपेक्षित परिसर से है, 1993 की रिट याचिका सं० 35, अर्थात् ग्राहक संस्था मंच और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, का संबंध उक्त अधिनियम के अधीन वाणिज्यिक उपयोग के प्रयोजनार्थ अधिग्रहीत परिसर से है। उसमें उक्त अधिनियम के अधीन अध्यपेक्षित परिसरों की दुकानों में मुंबई में राशन की दुकानें चलाने वाली सहकारी सोसाइटियों का संघ याची है। उसके कुछ सदस्य याची और अन्य प्रत्यर्थी हैं। इन परिसरों में से प्रत्येक 45 से अधिक वर्ष पूर्व अधिगृहीत किया गया था। इन सहकारी सोसाइटियों में से कुछ को राज्य सरकार ने अब नोटिस देकर उनसे यह अपेक्षा की है कि वे 26 दिसम्बर, 1992 से पहले परिसर को खाली कर दें जिससे कि परिसरों को फिर से अधिग्रहण मुक्त बनाया जा सके। रिट याचिका में परमादेश की प्रकृति की ऐसी रिट जारी करने की प्रार्थना की गई है जो राज्य सरकार को यह समादेश देती हो कि वह याचियों को अधिगृहीत परिसरों से बेदखल न करे। यह

[1] [1984] 3 उम० नि० प० 955=(1984) 2 एस० सी० सी० 337

रिट याद्य का वस्तुतः यह ईप्सा करती है कि एच०डी० वोहरा वाले मामले पर पुनर्विचार किया जाए ।

3. इन दोनों रिट याचिकाओं की सुनवाई एक साथ करके उनका निपटारा सुविधा की दृष्टि से एक ही निर्णय द्वारा किया जा सकता है ।

4. एच०डी० वोहरा वाले मामले में राज्य सरकार ने उक्त अधिनियम की धारा 6 (4)(क)द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके एक रिहाइशी भवन में का एक फ्लैट 9 अप्रैल, 1951 के आदेश द्वारा अधिगृहीत कर लिया । उक्त फ्लैट अपीलार्थी, एच०डी० वोहरा, के नाम आबंटित कर दिया गया जो न तो कोई सरकारी सेवक था और न ही कोई गृहविहीन व्यक्ति । यद्यपि राज्य सरकार पहले उस फ्लैट का आबंटन करने से इंकार कर चुकी थी फिर भी उसका आबंटन कर दिया गया । चूंकि उक्त भवन का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अन्तरित होता रहा था अतः नए स्वामी ने राज्य सरकार से उक्त फ्लैट को इस आधार पर अधिग्रहण मुक्त करने का अनुरोध किया कि अपीलार्थी के पक्ष में किया गया उक्त फ्लैट का आबंटन किसी लोक प्रयोजन के लिए किया गया आबंटन नहीं कहा जा सकता । चूंकि राज्य सरकार ने ऐसा नहीं किया अतः उक्त स्वामी ने उक्त फ्लैट का अधिग्रहण करने वाले आदेश की निरन्तरता को इस आधार पर चुनौती देते हुए मुम्बई उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की कि उक्त आदेश इतनी लंबी अवधि तक विद्यमान नहीं रह सकता । उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष रखी गई सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि उससे ऐसा कोई लोकप्रयोजन दर्शित नहीं होता जिसके कारण उक्त फ्लैट के अधिग्रहण का आदेश पारित किया गया तथा राज्य सरकार की ओर से इस प्रकथन का कोई प्रत्याख्यान नहीं किया गया कि अपीलार्थी न तो कोई सरकारी सेवक है और न ही कोई गृह विहीन व्यक्ति । अपील की जाने पर, इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सुआधारित है, यह अभिनिर्धारित किया कि अभिलेख पर विद्यमान सामग्री के आधार पर यह कहना संभव नहीं है कि अधिग्रहण का आदेश किसी लोक प्रयोजन के लिए पारित किया गया है । किंतु, अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई कि भले ही अधिग्रहण या आदेश इसलिए अविधिमान्य हो कि वह किसी लोक प्रयोजन से भिन्न प्रयोजन के लिए पारित किया गया है फिर भी भवन का स्वामी उसे 30 से अधिक वर्षों की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् उसे चुनौती देने का हकदार नहीं है और इसलिए न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह रिट याचिका को खारिज करे । न्यायालय ने इस संदर्भ में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :—

"अधिग्रहण पर रिट पिटीशन में किया गया आक्षेप यह था कि वह किसी लोक प्रयोजन के लिए नहीं दिया गया था और इसलिए वह विधिमान्य था तो यह संभव हो सकता है कि यह आक्षेप करके इस चुनौती के इस आधार को सफलतापूर्वक अभिखंडित कर दिया जाए कि उच्च न्यायालय को चाहिए था कि वह उस रिट पिटीशन को 30 वर्ष बीत जाने के पश्चात् ग्रहण न करता जिसमें कि अधिग्रहण संबंधी आदेश द्वारा आक्षेप किया गया था । किन्तु हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि तृतीय प्रत्यर्थी की ओर से किए गए आक्षेप का एक अन्य आधार भी था और वह अत्यन्त विकट आधार है जिसका कोई उत्तर नहीं दिया गया है । आक्षेप

संबंधी इस आधार के अन्तर्गत जो दलील प्रस्तुत की गई वह यह थी कि अधिग्रहण संबंधी कोई आदेश, अपनी प्रकृति से ही, अस्थायी स्वरूप का होता है और वह अनिश्चित कालावधि के लिए कायम नहीं रखा जा सकता और इसलिए वर्तमान मामले में अधिग्रहण संबंधी आदेश युक्तियुक्त कालावधि के पर्यवसहित हो जाने के पश्चात् विधिमान्य तथा प्रभावशील नहीं रह गया था और यह कि वह किन्हीं भी परिस्थितियों के अधीन लगभग 30 वर्ष की कालावधि के लिए कायम नहीं रह सकता था इसीलिए वह अभिखंडित तथा अपास्त किए जाने के अध्यधीन था अथवा किसी भी स्थिति में राज्य सरकार प्रतिसंहृत करने के लिए तथा उक्त फ्लैट को अनधिगृहीत करने के लिए आबद्ध थी। हमारी राय में इस दलील में पर्याप्त बल है और इसे कायम रखा जा सकता है। अधिग्रहण तथा अर्जन के बीच विधि में आधारभूत तथा मूल प्रभेद अभिज्ञात किया गया है। स्वयं संविधान की सप्तम् अनुसूची की सूची 3 की प्रविष्टि 42 के अन्तर्गत सम्पत्ति के अर्जन तथा अधिग्रहण के बीच इस प्रभेद को अभिज्ञात करता है। दो अवधारणाएं अर्थात् अधिग्रहण की अवधारणा और दूसरी अर्जन की अवधारणा दोनों सर्वथा प्रभिन्न तथा सुभिन्न हैं। अर्जन से निष्कासित स्वामी के समस्त हक का अर्जित किया जाना अभिप्रेत है चाहे उस हक की प्रकृति तथा विस्तार कैसा भी हो। मूल धारक में विहित अधिकारों का समस्त समूह अर्जन को अर्जक के प्रति संक्रात कर देता है, जबकि पूर्वतर को कुछ भी संक्रांत नहीं होता, देखिए: चिरंजीतलाल वाले मामले (1950 एस०सी० आर० 869) में न्या० मुखर्जी का सम्प्रेषण। अर्जन की अवधारणा स्थायी और पूर्ण प्रकृति की होती है क्योंकि इसमें मूल धारक के हक का अन्तरण अर्जन करने वाले प्राधिकारी को कर दिया जाता है। किन्तु अधिग्रहण की अवधारणा में केवल "स्वामित्व" के अधिकारों को अर्जित किए बिना सम्पत्ति पर क्षेत्राधिकार अथवा नियंत्रण" ग्रहण किया जाना मात्र अन्तर्वलित है और निश्चित रूप से वह अपनी प्रकृति से ही अस्थायी अस्तित्वावधि धारण करता है। यदि सम्पत्ति का अधिग्रहण विधिसम्मत रूप से निश्चित कालावधि के लिए कायम रखा जा सकता तो अधिग्रहण तथा अर्जन के बीच प्रभेद अस्पष्ट प्रवृत्ति धारण कर लेता क्योंकि ऐसी स्थिति में सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए सम्पत्ति पर कब्जा रखना तथा उसका उपयोग करने संबंधी अधिकार जो कि स्वामित्व के अधिकार का एक प्रमुख संघटकतत्व है अनिश्चित रूप से, अधिग्रहण करने वाले प्राधिकारी में किसी समय संबंधी परिसीमा के बिना अनिश्चितकाल के लिए निहित हो जाता और प्राधिकारी के लिए यह संभव हो जाता कि वह सम्पत्ति को अर्जित किए बिना तथा भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के अधीन प्रतिकर के रूप में पूर्ण बाजार मूल्य का संदाय किए बिना उस सम्पत्ति को सारवाम् रूप से ग्रहण कर सकता है। हमारे विचार में सरकार अधिग्रहण के परिवेश में अनिश्चित कालावधि के लिए सारवान् रूप से सम्पत्ति को अर्जित नहीं कर सकती है क्योंकि वह सरकार को प्रदत्त शक्ति पर एक छद्म स्वरूप रहेगा। यदि सरकार किसी सम्पत्ति को अनिश्चित कालावधि के लिए ग्रहण करना चाहती है तो निश्चित रूप से सरकार को चाहिए कि वह उस सम्पत्ति को अर्जित करे किन्तु वह उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिग्रहण संबंधी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकती।"

इस न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की कि अधिग्रहण की शक्ति का प्रयोग किसी लोक प्रयोजन के लिए किया जा सकता है जो अस्थायी प्रकृति का होता है। यदि वह लोक प्रयोजन जिसके लिए जिसके लिए परिसर अपेक्षित है आरंभ से ही स्थायी प्रकृति का हो तो परिसर की अध्यपेक्षा करने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता। जहां वह प्रयोजन, जिसके लिए परिसर अपेक्षित है, ऐसी प्रकृति का है कि वह परिसर के अधिग्रहण से पूरा नहीं हो सकता किंतु वह परिसर का अर्जन करके ही प्राप्त किया जा सकता है, तो ऐसी स्थिति होगी जिसमें प्रयोजन या तो स्थायी प्रकृति का हो अथवा जिसके अनिश्चितकाल तक बने रहने की संभावना हो। ऐसी किसी स्थिति में सरकार परिसर का अर्जन कर सकती है किंतु वह निश्चित रूप से परिसर का अधिग्रहण नहीं कर सकती और उसे अनिश्चित काल तक जारी नहीं रख सकती। इस न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति भी की कि यह विनिश्चित करना आवश्यक नहीं है कि किसी मामले में अधिग्रहण के आदेश की निरन्तरता की कितनी अवधि युक्तियुक्त मानी जा सकती है क्योंकि अन्ततोगत्वा इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों पर निर्भर करता है, किंतु इस बाबत कोई शंका नहीं की जा सकती कि वह लोक प्रयोजन, जिसके लिए अधिग्रहण का आदेश किया गया है, चाहे जो कुछ हो अधिग्रहण के आदेश को तीस वर्ष जितनी लंबी अवधि तक अयुक्तियुक्त रूप से जारी नहीं रखा जा सकता। अतः इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण को कायम रखा कि अधिग्रहण का आदेश और आगे जारी नहीं रह सकता, कि राज्य सरकार उसे प्रतिसंहृत करने तथा फ्लैट को अधिग्रहण युक्त करने और अपीलार्थी को उससे बेदखल करके उसका खाली कब्जा फ्लैट के स्वामी को हस्तांतरित करने के लिए बाध्य है।

5. इससे पूर्व कि हम अधिनियम के उपबंधों तथा काउंसेल की दलीलों का विवेचन करने के लिए अग्रसर हों इस न्यायालय के उक्त अधिनियम से संबंधित तीन निर्णयों पर ध्यान देना सुविधाजनक होगा।

6. **स्टेट आफ बोम्बे बनाम भांजी मुंजी**[1] वाले मामले में संविधान पीठ ने उक्त अधिनियम की विधिमान्यता कायम रखी। इस न्यायालय ने अपना यह निष्कर्ष दर्ज किया कि जिस समय उक्त अधिनियम पारित किया गया बम्बई में शरणार्थियों के भारी संख्या में आ जाने के कारण आवासन की स्थिति अत्यंत विकट थी। ऐसी स्थिति अपने साथ स्वेच्छाचारिता और अपराध के प्रति जो प्रलोभन लेकर आई, उससे सार्वजनिक शिष्टता, लोकाचार और लोक स्वास्थ्य का प्रश्न तत्काल उत्पन्न हो गया तथा कोरी मानवता के आधार पर जन चेतना जागृत हो गई। आवास विहीन व्यक्तियों की दयनीय स्थिति का लाभ उठाने वाले लालची मकान मालिकों के रूप में स्वामियों में होड़ लग गई। इससे प्रशासन की दक्षता संकटापन्न हो गई क्योंकि सरकारी सेवकों को उचित आवास नहीं मिल सकता था। इस दुर्व्यवस्था से निपटने के लिए जो नरम प्रयास किए गए वे निरर्थक साबित हुए। अतः सरकार को उक्त अधिनियम के रूप में कुछ अधिक कड़े कदम उठाने पड़े और ऐसा करके उसने जन कल्याण का काम किया। परिणामतः उसमें स्पष्ट लोक प्रयोजन तथा जनता का असंदिग्ध फायदा था।

[1] (1955) 2 एस० सी० आर० 777.

7. **कलेक्टर आफ अकोला और अन्य** बनाम **रामचंद्र और अन्य**[1] वाले मामले में प्रत्यर्थियों के स्वामित्व वाली भूमि बाढ़ पीड़ितों को फिर से बसाने के लिए ग्राम में एक नया स्थल स्थापित करने के लोक प्रयोजन के लिए उक्त अधिनियम के अधीन अधिगृहीत की गई। उक्त अधिग्रहण को इस आधार पर चुनौती दी गई कि अधिग्रहण के किसी स्थायी प्रयोजन के लिए पारित किया गया आदेश उक्त अधिनियम की परिधि से बाहर था जो उस समय अस्थायी प्रकृति का अधिनियम था। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त अधिनियम की धारा 5(1) के ये शब्द, 'किसी लोक प्रयोजन के लिए कोई भूमि', इतने व्यापक हैं कि उनके अंतर्गत कोई भी लोक प्रयोजन आ सके, चाहे वह प्रयोजन अस्थायी प्रकृति का हो अथवा अन्यथा। यह कहा गया कि उक्त धारा में इस आशय की किसी परिसीमा का पठन करना, कि इस अधिनियम द्वारा अनुध्यात प्रयोजन केवल अस्थायी प्रकृति का प्रयोजन है, उस प्रयोजन के स्वरूप को कानून की अल्पकालिकता के साथ गड्डमड्ड करना है जिसके लिए उसके अधीन शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। अधिग्रहण करने की शक्ति की आयु और वह प्रयोजन जिसके लिए उसका प्रयोग किया जाता है दो सुभिन्न तत्व हैं जिनकी बाबत भ्रम नहीं किया जाना है। शब्द "किसी लोक प्रयोजन के लिए" इतने व्यापक हैं कि उनकी परिधि के अंतर्गत कोई भी लोक प्रयोजन आ सकता है और उनमें उस प्रयोजन की प्रकृति से संबंधित कोई निर्बंधन नहीं है। वे किसी सक्षम प्राधिकारी की शक्ति के विधिगम्य प्रयोग के लिए आवश्यक लोक प्रयोजन की प्रकृति के संबंध में सक्षम प्राधिकारी पर कोई परिसीमा अधिरोपित नहीं करते हैं और न ही वे उस शक्ति के प्रयोग को केवल स्थायी प्रकृति के प्रयोजन तक सीमित करते हैं। जिस रीति में अधिगृहीत भूमि का उपयोग किया जाता है उसके संबंध में इसके सिवाय कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं किया गया है कि अधिग्रहण का प्रयोजन लोक प्रयोजन होना चाहिए। उसका उपयोग किसी अस्थायी प्रयोजन के लिए अथवा किसी ऐसे प्रयोजन के लिए किया जा सकता है जो अस्थायी नहीं है। यदि अधिग्रहण प्राधिकारी भूमि का उपयोग किसी ऐसे प्रयोजन के लिए करता है जो अस्थायी नहीं है, जैसे कि उस भूमि पर मकानों का सन्निर्माण करने के लिए किसी नए ग्राम स्थल की स्थापना, तो वह सरकारी प्रयोजन है और जो व्यक्ति उस पर संरचनाएं करते हैं उन्हें इस संभावना का ध्यान रखना है कि उन्हें ऐसी भूमि मूल स्थिति में उसके स्थायी को लौटानी पड़ सकती है किंतु इसका अभिप्राय यही नहीं है कि उक्त शक्ति किसी अस्थायी प्रयोजन तक ही निर्बंधित है।

8. तत्पश्चात् हम **एच० डी० वोरा**[2] वाले मामले में के निर्णय के एक पश्चात्वर्ती निर्णय पर आते हैं। सव्यसाची मुखर्जी ने, जो एच०डी० वोरा वाले मामले की सुनवाई करने वाले दो न्यायाधीशों में से एक थे, तीन विद्वान न्यायाधीशों वाली न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाया। उन्होंने कहा कि **कलेक्टर आफ अकोला**[1] और **एच० डी० वोरा**[2] वाले मामलों में के विनिश्चयों में कोई अंतर नहीं है। **कलेक्टर आफ अकोला**[1] वाले मामले में ऐसा कोई प्रश्न नहीं उठाया गया कि क्या अधिग्रहण आदेश अनिश्चित काल तक बना रह सकता है। **एच० डी० वोरा**[2] वाले मामले में किसी भी पक्ष ने यह दलील नहीं दी कि गृहविहीन व्यक्तियों के आवासन का प्रयोजन अस्थायी प्रकृति का प्रयोजन न होकर स्थायी प्रकृति का प्रयोजन है

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 401.

[2] [1984] 3 उम० नि० प० 955=(1984) 2 एस० सी० सी० 337,

और इसलिए अधिग्रहण का आदेश अवैध है। दी गई मुख्य दलील यह थी कि यद्यपि अधिग्रहण का आदेश उस समय वैध था जब वह पारित किया गया फिर भी वह इसलिए विधिमान्य और प्रभावी नहीं रहा क्योंकि वह अनिश्चित काल तक विधिसम्मत रूप से जारी नहीं रखा जा सकता था। अधिग्रहण का आदेश लगभग 30 वर्षों तक जारी रहने दिया गया और यही कारण है कि यह बात कही गई कि अधिग्रहण का आदेश विधिमान्य और प्रभावी नहीं रहा और इसलिए परिसर अनधिगृहीत किया जाना चाहिए। न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :—

> "यह बात निस्संदेह सच है कि जिस प्रयोजन के लिए अधिग्रहण का आदेश पारित किया जा सकता है उसके स्थायी अथवा अस्थायी स्वरूप के संबंध में उस मामले में के निर्णय में कुछ मताभिव्यक्तियां की गई हैं और उस निर्णय में उस सीमा तक जो कुछ कहा गया है उसमें किंचित उपांतरण करना पड़ सकता है किंतु उस मामले में का मुख्य विनिश्चय यह था कि अधिग्रहण के आदेश का स्वरूप अपनी प्रकृति से ही अस्थायी होता है और उसे किसी अनिश्चित काल तक चालू नहीं रहने दिया जा सकता क्योंकि उस दशा में वह आदेश अर्जन के आदेश की कोटि में आ जाएगा और वह अधिग्रहण की शक्ति के प्रयोग के संबंध में कपट करने के बराबर होगा, विशेष रूप से वहां, जहां अर्जन करने के मार्ग में कोई अड़चन न हो तथा अर्जन करने का कोई प्रयास न किया गया हो। इसे उक्त विधि का शुद्ध प्रतिपादन माना जाना चाहिए जिसका कलेक्टर आफ अकोला बनाम रामचंद्र वाले मामले में प्रतिपादित विधिक सिद्धांत के साथ कोई विरोध नहीं है।"

न्यायालय ने **मांगी लाल कारवा** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में की नागपुर उच्च न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों का अनुमोदन किया जो निम्नलिखित हैं :—

> "यदि 'अधिग्रहण' शब्द ने दोनों विश्व युद्धों के दौरान कोई तकनीकी अर्थ अर्जित कर लिया है तो उसका उपयोग संपत्ति को, राज्य के प्रयोजन के लिए अथवा ऐसे प्रयोजनों के लिए जो किसी लोक सेवक को किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए किसी सीमित अवधि तक किसी प्राइवेट संपत्ति का कब्जा लेने के लिए प्राधिकृत करने वाले कानून में विनिर्दिष्ट किए जाएं, कब्जे में लेने के अर्थ में किया गया है जो कब्जा संपत्ति के उस अर्जन से भिन्न है, जिसके द्वारा संपत्ति के प्रति स्वत्व व्यष्टि से राज्य को अथवा किसी ऐसे लोग निकाय को अंतरित हो जाता है जिसके फायदे के लिए संपत्ति अर्जित की जाती है। अधिग्रहण की स्थिति में राज्य व्यवहृत की जाने वाली संपत्ति का अर्जन नहीं करता बल्कि वह उसे कतिपय विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए फिलहाल स्वामी के नियंत्रण से बाहर निकाल लेता है। तथापि, इस सीमित प्रयोजन के लिए भी, स्वामी प्रतिकर का हकदार बन जाता है क्योंकि संपत्ति का अधिग्रहण उसके स्वामी को संपत्ति से कम से कम वंचित तो करता ही है।"

न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की कि प्रसामान्यतः "अधिग्रहण" शब्द का अर्थ है—संपत्ति को किसी सीमित अवधि के लिए कब्जे में लेना जो कब्जा संपत्ति के अर्जन से भिन्न होता है।

---

[1] आई० एल० आर० 1955 नागपुर 34.

इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए कि अमुक मामले के शक्ति का वस्तुत: दुरुपयोग किया गया है इस प्रसिद्ध अर्थ का ध्यान रखा जाना है। अधिग्रहण और अर्जन के आदेशों के परिणाम अलग-अलग प्रकार के होते हैं। उक्त दोनों संकल्पनाएं परस्पर भिन्न हैं। एक के मामले में संपत्ति का स्वत्व अर्जन प्राधिकारी को अंतरित हो जाता है और दूसरे के मामले में स्वत्व तो स्वामी के पास बना रहता है किंतु संपत्ति का कब्जा अधिग्रहण प्राधिकारी द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है।

9. 1993 की रिट याचिका सं० 53 में के रिट याचियों के विद्वान काउंसेल श्री वी० एम० तारकुंडे ने यह निवेदन किया कि अधिग्रहण का आश्रय आपत्काल की दशाओं में लिया जाता है। उक्त अधिनियम से पूर्व 1947 में एक अध्यादेश पारित कर दिया गया जो अगले वर्ष पारित किया गया था। तत्कालीन बांबे स्टेट के अनेक शहरों में आवास की विकट कमी थी। आवास की समस्या की कठोरता कम नहीं हुई किंतु वह और बढ़ती चली गई। ऐसी स्थिति में अधिग्रहण के आदेशों की निरंतरता विधि की दृष्टि में अवैध नहीं ठहराई जा सकती थी, और न ही न्यायालय यह अभिनिर्धारित कर सकता था कि अधिग्रहण अमुक वर्षों की समाप्ति के पश्चात् जारी नहीं रह सकता। संविधान में ऐसी कोई अधिकतम अवधि अधिकथित नहीं की गई है जिस तक कोई अधिग्रहण चालू रह सकता है। संविधान के किसी भी उपबंध ने अधिग्रहण की किसी विधि को अविधिमान्य नहीं बनाया है जिसके अधीन संपत्ति अनिश्चित काल के लिए अधिग्रहीत की जा सकती है। यह तथ्य भाग कि किसी दीर्घ अवधि तक के लिए किया गया अधिग्रहण अर्जन की कोटि में आ सकता है किसी ऐसे उपबंध की विधिमान्यता को क्षीण नहीं बनाता जो अधिग्रहण को अनिश्चित काल तक चालू रखता है। अत: एच० डी० वोहरा वाला मामला अशुद्ध रूप से विनिश्चित किया गया था। उस मामले में रिट याची, अर्थात् सहकारी सोसायटी द्वारा कब्जाधृत परिसर के अधिग्रहण को चालू न रखने का कोई कारण नहीं था जबकि वे सोसाइटियां लोक वितरण स्कीम के अधीन उचित दरों पर खाद्यान्नों का प्रदाय करने का प्रयोजन पूरा करती थीं तथा बंबई में आवास की कमी से उत्पन्न होने वाली अधिग्रहण की आवश्यकता बनी हुई थी। उक्त अधिनियम का विस्तार 31 दिसम्बर, 1994 तक किया गया और उसका विस्तार आगे भी किया जाना चाहिए था।

10. 1986 की रिट याचिका सं० 404 में के याचियों के विद्वान काउंसेल सुश्री इंदिरा जयसिंह ने यह दलील दी कि उक्त अधिनियम के अधीन परिसर का अधिग्रहण करने के उपबंध किरायों का नियंत्रण करने के लिए किए गए थे। उक्त अधिनियम का अभिप्राय आवास की कमी की रिष्टि का उपचार करना था जिसे समय के सापेक्ष निश्चित नहीं कहा जा सकता था। इस संबंध में अधिनियम के कतिपय उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया जिन पर हम अब विचार करेंगे।

11. नए सिरे से फाइल की गई अगृहीत रिट याचिका (अर्थात् महाराष्ट्र राज्य सरकारी कर्मचारी परिसंघ (उसके महासचिव श्री आर० जी० कार्णिक और अन्य के माध्यम से) **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (महाराष्ट्र राज्य के मुख्य सचिव के माध्यम से), 1994 की रिट याचिका (सिविल) सं० 27, में के रिट याचियों की ओर से हाजिर होने वाले श्री नरीमन को

मध्यक्षेप करने की अनुमति दी गई और उन्होंने यह निवेदन किया कि **मांजी मुंजी**[1] और **कलेक्टर आफ अकोला**[2] वाले मामलों में के निर्णय उस न्यायपीठ को आवद्ध करते हैं जिसने **एच० डी० बोहरा**[3] वाले मामले का विनिश्चय किया और एच० डी० वोहरा वाले मामले में का निर्णय उनसे असंगत था।

12. प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य दलील रिट याचिका सं० 404/86 में के मकान मालिकों के विद्वान काउंसेल श्री सॉली जे० सोराब जी द्वारा की गई। उन्होंने इस बात को विवादग्रस्त नहीं बनाया कि अधिग्रहण का प्रयोजन स्थायी प्रकृति का हो सकता है। उनकी दलील यह थी कि अधिग्रहण की अवधि स्थायी नहीं हो सकती। अधिग्रहण की संकल्पना में यह बात अंतर्निहित है कि वह कब्जा और उपयोग अवधि की दृष्टि से सीमित होता है और उन्होंने जीवनी देवी पराकी (तनैव) वाले मामले में के निर्णय पर बल दिया। श्री सोराब जी ने भूमि के अर्जन और अधिग्रहण के संबंध में भारत के विधि आयोग की दसवीं रिपोर्ट के प्रति भी निर्देश किया। विधि आयोग का दृष्टिकोण यह था कि किसी प्राइवेट स्वामी की संपत्ति का अधिग्रहण करने की शक्ति असाधारण होती है और उसका न्याय रूप से आश्रय आपत्कालीन स्थिति में ही लिया जा सकता है। अधिग्रहण अधिनियमों में से अधिकांश अधिनियमों के अस्थायी होने का कारण संभवतः यही था। विधि आयोग ने यह सिफारिश की कि अधिग्रहण संबंधी विधि किसी स्थायी संहिता में निकायित की जानी चाहिए किंतु जब ऐसी कार्रवाई करनी आवश्यक समझी जाए तो उस विधि को किसी अधिसूचना द्वारा प्रभावी बनाया जाना चाहिए। यह सिफारिश भी की गई कि संपत्ति पांच से अधिक वर्षों तक अधिग्रहण के अधीन नहीं रखी जानी चाहिए। यदि सरकार उस अवधि की समाप्ति से पूर्व संपत्ति को अर्जित करना चाहती है तो वह ऐसा करने के लिए स्वाधीन है, यदि वह संपत्ति का अर्जन करने का विनिश्चय नहीं करती तो उसके लिए यह उचित नहीं है कि वह संपत्ति को अनिश्चित काल तक अपने कब्जे में रखे। श्री सोराब जी ने यह भी इंगित किया कि उक्त अधिनियम तथा स्थावर संपत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 तदनुसार संशोधित किए गए हैं। राज्य सरकार के विद्वान काउंसेल श्री ढोलकिया ने मुख्यतः श्री सोराबजी की दलील अपनाई।

13. उक्त अधिनियम की धारा 4(2) में, जैसा कि वह अब कानून पुस्तिका में है, भूमि की परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि भूमि में भूमि और भवनों से तथा पृथ्वी से जुड़ी अथवा भवनों से स्थायी रूप से बद्ध वस्तुओं से उद्भूत होने वाले फायदे सम्मिलित हैं। उक्त अधिनियम की धारा 4(3) में "परिसर" से किराए पर दिया गया अथवा दिए जाने के लिए आशयित कोई भवन अथवा उसका कोई भाग अभिप्रेत है। "अभिग्रहण करना" अभिव्यक्ति धारा 4(5) में परिभाषित है जिससे किसी भूमि के संबंध में, भूमि का कब्जा लेना या उसे राज्य सरकार को सौंपे जाने के लिए उसकी अपेक्षा करना अभिप्रेत है। धारा 5(1) सरकार को लिखित में आदेश द्वारा किसी लोक प्रयोजन के लिए किसी भूमि का अधिग्रहण करने के लिए सशक्त बनाती है, बशर्ते कि ऐसा करना आवश्यक अथवा समीचीन हो। उक्त धारा

[1] (1955) 2 एस० सी० आर० 777.

[2] (1968) 2 एस० सी० आर० 401.

[3] [1984] 3 उम० नि० प० 955=(1984) 2 एस० सी० सी० 337.

1994(4) eILR(PAT) SC 1

के परंतुक में यह कहा गया है कि कोई भवन या उसका कोई भाग जिसमें, यथाशक्ति, स्वामी, मकान मालिक अथवा किराएदार उक्त आदेश की तारीख से अव्यवहित पूर्व छह मास की अवधि के दौरान लगातार निवास करता हो, अधिगृहीत नहीं किया जाएगा। धारा 5 की उपधारा 2 यह अपेक्षा करती है कि इस संबंध में जांच की जाएगी। धारा 6(1) राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट किसी क्षेत्र में स्थित परिसर के मालिक पर यह बाध्यता अधिरोपित करती है कि वह परिसर में स्थित होने वाले किसी स्थान की सूचना राज्य सरकार को विहित फार्म में दे। धारा 6 की उपधारा 3 मकान मालिक को, ऐसी सूचना देने से पूर्व तथा ऐसी सूचना दी जाने की तारीख से एक मास की अवधि के लिए ऐसे परिसर को राज्य सरकार की अनुमति के बिना किराए पर देने, अधिभोग में लेने अथवा अधिभोग के लिए जाने की अनुमति देने से प्रवरित करती है। राज्य सरकार उपधारा 4 के अधीन, चाहे उपधारा (1) के अधीन सूचना दी गई हो अथवा नहीं और धारा 5 में किसी बात के होते हुए भी, परिसरों का किसी लोक प्रयोजन के लिए अधिग्रहण कर सकेगी और उन्हें इस रीति में उपयोग में ला सकेगी जैसी उसे समुचित प्रतीत हो। धारा 8 में उस दशा में प्रतिकर का संदाय किए जाने का उपबंध है जब कोई भूमि उक्त अधिनियम के अधीन अधिगृहीत की जाती है। इसमें अन्य बातों के साथ प्रतिकर का संदाय एकमुश्त करना अनुध्यात है। धारा 8ख राज्य सरकार को उक्त अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सक्षम प्राधिकारी की नियुक्ति करने के लिए सशक्त बनाती है। धारा 8ग के अधीन, यदि उस सक्षम प्राधिकारी का वैसी जांच करने के पश्चात् जैसी वह उचित समझे, इस बाबत समाधान हो गया हो कि अधिगृहीत भूमि अथवा परिसर के आबंटिती ने यथोचित मासिक प्रतिकर का संदाय नहीं किया है अथवा पूरा परिसर अथवा उसका कोई भाग बिना अनुमति शिकमी किराएदारी पर दे दिया हो अथवा आबंटन के निबंधनों और शर्तों का उल्लेख करते हुए कोई कार्य किए हो अथवा उसका अप्राधिकृत अधिभोग करता रहा हो अथवा कोई अन्य, व्यक्ति उसका अप्राधिकृत अधिभोग कर रहा हो अथवा ऐसी भूमि अथवा परिसर अधिग्रहण से मुक्त किए जाने हों, तो वह आबंटिती को यह आदेश दे सकेगा कि वह परिसर को खाली कर दे। धारा 8ङ इस बात को स्पष्ट करती है कि अधिगृहीत भूमि अथवा परिसर का अधिग्रहण उसके उपयोग और अधिभोग के प्रयोजनार्थ अनुज्ञप्ति समझा जाएगा। धारा 9 राज्य सरकार को किसी अधिगृहीत भूमि को अधिग्रहण से किसी भी समय मुक्त करने के लिए सशक्त बनाती है। उसकी उपधारा 1क में यह कहा गया है कि राज्य सरकार, उपधारा 1 में किसी बात के होते हुए, उक्त अधिनियम के अधीन 31 दिसम्बर, 1994 को या उससे पूर्व अधिगृहीत किसी भूमि को निर्मुक्त करेगी तथा उपधारा 2 के कारण ऐसी भूमि यथासंभव उसी दशा में प्रत्यावर्तित की जानी चाहिए जिसमें वह तब थी जब राज्य सरकार ने उसे अपने कब्जे में लिया था। उक्त अधिनियम के अन्य उपबंधों से हम संबद्ध नहीं है। हमें केवल इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि उक्त अधिनियम ने बांबे लैंड रिक्वीजीशन आर्डिनैंस, 1947 के उपबंधों का निरसन कर दिया तथा धारा 20 की उपधारा 2 में यह कहा गया कि उक्त अध्यादेश के निरसन के बावजूद भी, कोई भूमि जो उक्त अध्यादेश के अधीन अधिग्रहीत की गई है या अधिग्रहण की विषयवस्तु बनी हुई है, उक्त अधिनियम के अधीन अधिग्रहण की विषयवस्तु समझी जाएगी।

14. जब आरंभ में उक्त अधिनियम की अधिनियमित की गई थी तब उसकी धारा 3

1994(4) eILR(PAT) SC 1

में यह उपबंध था कि वह 31 मार्च, 1950 तक प्रवृत्त रहेगा। अपने मूल रूप में अधिनियमित उक्त अधिनियम की धारा 6(4)(ख) तत्कालीन प्रांतीय सरकार को मकान मालिक से यह अपेक्षा करने के लिए सशक्त बनाती थी कि वह परिसर को विनिर्दिष्ट व्यक्तियों को अथवा व्यक्तियों के वर्ग को अथबा विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में किराए पर दे। उक्त अधिनियम इस प्रकार संशोधित किया गया कि 1973 के महाराष्ट्र अधिनियम संख्यांक 21 की धारा 2 द्वारा धारा 3 निकल गई। उसी समय धारा 9 में उपधारा 1क सन्निविष्ट की गई जो राज्य सरकार पर यह बाध्यता अधिरोपित करती थी कि वह कथित अवधि की समाप्ति के पश्चात् भूमि को अधिग्रहण से मुक्त कर दे। वह अवधि क्रमिक संशोधनों द्वारा समय-समय पर बढ़ाई गई और जैसा कि अधिनियम इस समय है, उक्त अवधि 31 दिसम्बर, 1994 को समाप्त होती है। 1952 के बांबे (संशोधन) अधिनियम संख्यांक 5 की धारा 3(2) द्वारा धारा 6(4)(ख) निकाल दी गई तथा उपधारा 4 के परन्तुक में परिणामी संशोधन किए गए।

15. अतः मूल रूप में अधिनियमित उक्त अधिनियम राज्य सरकार को मकान-मालिकों से यह अपेक्षा करने के लिए सशक्त बनाता था कि वे परिसरों को किराए पर दें। उस संबंध में उपबंध निकाल दिए गए। अतः सुश्री जयसिंह की इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है कि उक्त अधिनियम अपने वर्तमान रूप में किराया नियंत्रण विधान है, मूलरूप में अधिनियमित उक्त अधिनियम में परिसरों का अधिग्रहण और उनका अनिवार्य रूप से किराए पर दिया जाना अनुध्यात था। इस बात से यह उपदर्शित होता है कि विधानमंडल का आशय परिसरों को किराए पर देकर स्थायी व्यवस्था करना तथा उनका अधिग्रहण करके अस्थायी व्यवस्था करना था। याचियों के विद्वान काउंसेलों ने इस तथ्य पर बल दिया कि धारा 9 राज्य सरकार को भूमि को अधिग्रहण से मुक्त करने के लिए प्राधिकृत करती है तथा उसकी उपधारा 1क के उपबंध राज्य सरकार पर यह बाध्यता अधिरोपित करते हैं कि वह उसमें उल्लिखित अवधि से पूर्व ऐसा करे। यह दलील दी गई कि चूंकि अधिनियम के प्रयोजनों के लिए "भूमि" और "परिसर" शब्द अलग-अलग परिभाषित किए गए हैं अतः राज्य सरकार की ऐसी कोई विवशता नहीं है कि वह परिसरों अर्थात् किराए पर दिए गए अथवा दिए जाने के लिए आशयित किसी भवन अथवा उसके भाग को अधिग्रहण से मुक्त करे और यह कि जहां तक परिसर का संबंध है, अधिग्रहण से कोई अस्थायी व्यवस्था आशयित नहीं है। भूमि की जो परिभाषा दी गई है उसमें वे सभी फायदे सम्मिलित हैं, जो भूमि और भवनों से तथा पृथ्वी से जुड़ी अथवा भवनों से स्थायी रूप से बद्ध सभी वस्तुओं से उदभूत होते हैं तथा "परिसर" से कोई भवन अथवा उसका भाग अभिप्रेत है जो किराए पर दिया गया हो अथवा दिए जाने के लिए आशयित है। हमारे विचार से, भूमि की परिभाषा व्यापक है और उसमें ऐसा कोई भवन अथवा उसका भाग स्पष्ट रूप से सम्मिलित है, जो किराए पर दिया गया है अथवा दिए जाने के लिए आशयित है। परिसर इसलिए पृथक् रूप से परिभाषित किया गया प्रतीत होता है क्योंकि मूल रूप में अधिनियमित किए गए उक्त अधिनियम ने राज्य सरकार को न केवल परिसर का अधिग्रहण करने के लिए सशक्त बनाया बल्कि मकान मालिकों को इस बात के लिए विवश करने के लिए भी सशक्त बनाया है कि वे परिसरों को किराए पर दें। अतः इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं है, कि धारा 9 की उपधारा 1क के अधीन

1994(4) eILR(PAT) SC 1

राज्य सरकार उसमें कथित अवधि के भीतर परिसर को अधिग्रहण से मुक्त करने के लिए बाध्य है।

16. हम **कलेक्टर आफ अकोला**[1] तथा जीवनी कुमार पराकी वाले मामलों में अपनाए गए इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि अधिग्रहण के किसी आदेश का प्रयोजन स्थायी हो सकता है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि अधिग्रहण का कोई आदेश अनिश्चित काल तक अथवा उससे अधिक अवधि तक, जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में युक्तियुक्त हो, चालू रखा जा सकता है। इस संबंध में हम **मांगीलाल कारवा बनाम मध्यप्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में नागपुर उच्च न्यायालय की मताभिव्यक्तियों पर, जो ऊपर उद्धृत की गई है, ध्यान देकर उनका अनुमोदन करते हैं जैसा कि इस न्यायालय ने जीवनी कुमार पराकी के मामले में किया था। अधिग्रहण के अस्थायी होने की संकल्पना विधि आयोग की दसवीं रिपोर्ट से तथा, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मूल रूप में विद्यमान तथा समय-समय पर यथोसंशोधित उक्त अधिनियम से भी उपदर्शित होती है। यह निष्कर्ष निकालने में कोई विरोधाभास नहीं है कि यद्यपि किसी स्थायी लोक प्रयोजन के लिए अधिग्रहण का आदेश निकाला जा सकता है, फिर भी उसे अनिश्चित काल तक चालू नहीं रखा जा सकता। अधिग्रहण का आश्रय किसी स्थायी लोक प्रयोजन के लिए, उदाहरणार्थ उस प्रयोजन के लिए स्थायी परिसर उपलब्ध कराने के लिए, अपेक्षित समय तक के लिए लेना पड़ सकता है। अर्जन और अधिग्रहण की संकल्पनाएं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न संकल्पनाएं हैं जहां तक उनसे निःसृत होने वाले परिणामों का संबंध है। वस्तुतः किसी मकानमालिक को संपत्ति के प्रति उसके अधिकार और स्वत्व से, सम्यक् प्रतिकर का संदाय किए बिना, वंचित नहीं किया जा सकता, और दीर्घकालिक अधिग्रहण की परिणति इसी परिणाम में होती है। अधिग्रहण किसी उचित अवधि तक ही चालू रखा जा सकता है; और यह बात, ऐसी उचित अवधि कितनी हो, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करती है, और इसका विनिश्चय साधारणतः सरकार करेगी।

17. उपर्युक्त कारणों की वजह से हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि एच० डी० वोहरा वाले मामले में किए गए विनिश्चय पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है। तथापि, हम उसमें की गई इस आशय की मताभिव्यक्तियों का अनुमोदन नहीं करते कि उक्त अधिनियम के अधीन, किसी स्थायी प्रयोजन के लिए अधिग्रहण का आदेश पारित नहीं किया जा सकता। हम इस बात को स्पष्ट किए देते हैं कि उक्त विनिश्चय यह अधिकथित नहीं करता कि कोई अधिग्रहण आदेश 30 वर्ष तक जारी रह सकता है जैसी कि दलील दी गई है। विनिश्चय में 30 वर्ष की अवधि का उल्लेख उससे संबद्ध अधिग्रहण आदेश की तारीख के संदर्भ में किया गया था। अधिग्रहण का कोई आदेश उचित अवधि तक चालू रह सकता है और यह अभिनिर्धारित किया गया, जैसा कि हम अभिनिर्धारित कर रहे हैं, कि अधिग्रहण आदेश का 30 वर्ष जितनी लंबी अवधि तक जारी रहना उचित नहीं था।

18. राज्य में अधिगृहीत परिसर से संबंधित स्थिति 1986 की रिट याचिका सं० 404 में राज्य सरकार की ओर से वसंत जे० पटवर्धन द्वारा 21 अप्रैल, 1986 को

[1] (1968) 1 एस० सी० आर० 401.

फाइल किए गए शपथ-पत्र में इस प्रकार वर्णित है :—

"महाराष्ट्र राज्य सरकार परिसरों का अधिग्रहण करने के पश्चात् उनका आबंटन राज्य सरकार के कर्मचारियों/राज्य सरकार के कार्यालयों/सरकार की नीति के अधीन अनुज्ञेय व्यक्तियों/कार्यालयों के अन्य प्रवर्ग को करती रही है। महाराष्ट्र राज्य में अधिगृहीत रिहाइशी परिसर न केवल राज्य सरकार के कर्मचारियों को आबंटित किए गए हैं, वरन् व्यक्तियों के अन्य प्रवर्गों, जैसे बेघर व्यक्ति, को भी आबंटित किए गए हैं। फिलहाल महाराष्ट्र में लगभग 2300 रिहाइशी और लगभग 247 गैर रिहाइशी अधिगृहीत परिसर हैं जिनमें से लगभग 1928 रिहाइशी अधिगृहीत परिसर अकेले बंबई में हैं और उनमें से 1779 परिसर सन् 1960 में या उससे पहले अधिगृहीत किए गए थे, अर्थात् वे 25 से भी अधिक वर्षों से अधिग्रहण के अधीन रहे हैं। बंबई में लगभग 1404 परिसर सरकारी कर्मचारियों को आबंटित हैं और उनमें से लगभग 276 उन सरकारी कर्मचारियों के कब्जे में बने हुए हैं जो अब सरकारी कर्मचारी नहीं रहे हैं। रिहाइशी परिसरों में से लगभग 497 अन्य प्रवर्गों के व्यक्तियों, जैसे घर गिरने के शिकार व्यक्ति, बेघर व्यक्ति, आदि को आबंटित हैं।"

हम यहां इस बात का भी उल्लेख कर सकते हैं कि इन रिहाइशी परिसरों में कुछ परिसर बड़े फ्लैटों के रूप में हैं जो बंबई नगर के सर्वोत्तम परिक्षेत्रों में स्थित हैं।

19. हमारी राय में राज्य सरकार को इस बात के लिए विवश नहीं किया जा सकता कि वह सभी अधिगृहीत परिसरों के आबंटितियों को अनुकल्पी आवास प्रदान करे तथा हम इस संबंध में याचियों के विद्वान काउन्सेल के अभिवाक् को अस्वीकार करते हैं। उनमें से उन व्यक्तियों को, जिन्हें अनुकल्पी आवास प्रदान करना प्रशासन के हित में होगा, आवास प्रदान करने की वांछनीयता और शक्यता पर विचार करना राज्य सरकार का कर्त्तव्य है।

20. सन् 1950 के आस-पास निकाले गए अधिग्रहण आदेशों, विशेष रूप से रिहाइशी परिसरों के अधिग्रहण आदेशों, की निरंतरता मुम्बई उच्च न्यायालय ने **एच० डी० वोहरा**[1] वाले मामले का अनुसरण करके अनेक मामलों में विखंडित की है जिनके विरुद्ध कोई अपील नहीं दी गई है, सिवाय एक अपील के जिसे इस न्यायपीठ ने एक पृथक् आदेश द्वारा खारिज कर दिया। इन अधिगृहीत परिसरों के आबंटिती उन सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों को छोड़कर; जिन्हें सरकारी कर्मचारियों के आवासन के प्रयोजनार्थ अधिगृहीत परिसर आबंटित किए गए और उनके विधिक प्रतिनिधि 1986 की रिट याचिका सं० 404 में समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के कारण उनके लगातार अधिभोगी बने रहे हैं। बंबई में और महाराष्ट्र के अन्य बड़े नगरों में अनुकल्पी आवास तलाश करने की सर्वविदित कठिनाई का ध्यान रखते हुए, इन अंतरिम आदेशों का संरक्षण 30 नवम्बर, 1994 तक जारी रखा जाता है जिस तारीख को उन परिसरों के सभी अधिभोगी, जिनका सतत अधिग्रहण उपर्युक्त रीति में अभिखंडित कर दिया गया है, परिसरों

[1] [1984] 3 उम० नि० प० 955 : (1984) 2 एस० सी० सी० 337.

1994(4) eILR(PAT) SC 1

को खाली करने और उनका खाली कब्जा राज्य सरकार को सौंपने के लिए बाध्य होंगे जिससे कि राज्य सरकार 31 दिसम्बर, 1994 को अथवा उससे पूर्व ऐसे परिसरों को अधिग्रहणमुक्त करके उनका खाली कब्जा मकान मालिकों को हस्तांतरित कर सके।

21. तदनुसार, रिट याचिकाएं खारिज की जाती हैं। खर्चे की बाबत कोई आदेश नहीं होगा।

न्या० सावंत

22. मुझे न्या० भरूचा द्वारा तैयार किए गए निर्णय के मसविदे का परिशीलन करने का सुलाभ प्राप्त हुआ है। यद्यपि मैं विधि विषयक प्रश्नों के संबंध में निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हूं फिर भी मैं प्रस्तावित आदेश से सहमत होने में असमर्थ हूं। मेरा यह दृष्टिकोण है कि उक्त विधिक स्थिति के होते हुए निम्नलिखित निदेश दिए जा सकते हैं जिससे कि अधिगृहीत परिसरों के आबंटितियों की कठिनाई में कमी की जा सके। इन निदेशों का परिसरों के मालिकों के हितों पर किसी भी रूप में प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस समय उन्हें आबंटितियों से वही किराया मिल रहा है जो अन्य किराएदारों से मिलता है। किराया अधिनियम के कारण उन्हें उन नए किराएदारों से, जिन्हें वे अधिग्रहण से निर्मुक्ति के पश्चात् परिसरों में किराएदार रख सकते हैं, अधिक किराया नहीं मिलेगा। मकानमालिकों को विरल मामलों में ही परिसरों की वैयक्तिक सद्भावी आवश्यकता होगी। अतः सब मिलाकर स्थिति यह है कि इन निदेशों के कारण उन्हें कुछ और समय तक उन परिसरों में अपनी इच्छा के नए किराएदारों को रखने के अधिकार से वंचित रहना पड़ेगा। यह एक कुख्यात तथ्य है कि ऐसे अधिकार का प्रयोग अक्सर उन व्यक्तियों के पक्ष में किया जाता है जो एक दूसरे से बढ़-चढ़कर अवैध प्रतिफल, जिसे "पगड़ी" कहते हैं, देने की प्रस्थाना कर सकें और जो समय गुजरने के साथ-साथ बढ़ता जा रहा है।

23. अतः मैं निम्नलिखित आदेश पारित करूंगा :—

हमारे समक्ष दो प्रकार के आबंटिती हैं :—

(क) उपभोक्ता सरकारी सोसाइटियां जिन्हें उचित दर दुकानें चलाने के लिए परिसर आबंटित किए गए हैं, और (ख) वे व्यक्ति, जिन्हें रिहाइशी परिसर आबंटित किए गए हैं।

24. जो व्यक्ति उचित दर दुकानें चला रहे हैं, अधिकांशतः मध्यम और निम्न आय वर्ग के व्यक्ति हैं। उनकी संख्या काफी अधिक है। आबंटिती-सहकारी सोसायटियां, काफी बड़ी संख्या में कर्मचारियों को भी नियोजित करते हैं जिन्हें दुकानों का खाली किया जाना अपेक्षित होने की दशा में रातों रात बेरोजगारी का तथा सोसायटियों को अपने परिसमापन का सामना करना पड़ेगा। अतः यह आवश्यक है कि राज्य सरकार इससे पूर्व कि आबंटिती, सहकारी सोसायटियां, वर्तमान दुकानों से बेदखल किए जाएं, उन्हीं परिक्षेत्रों में जिनमें आबंटिती सहकारी सोसायटियां, अपनी दुकानें चला रहे हैं, अन्य व्यक्तियों द्वारा चलाई जा रही दुकानों में सर्वप्रथम उपभोक्ताओं के फायदे के लिए, राशन की दुकानों के आवास के लिए उपयुक्त व्यवस्था करे। द्वितीयतः, उपभोक्ता सोसायटियों को नए परिसरों की तलाश करने

के लिए तथा सोसायटियों के कर्मचारियों को अनुकल्पी नियोजन तलाश करने के लिए काफी समय मिलना चाहिए। अतः राज्य सरकार को चाहिए कि वह 31 मई, 1996 से पहले परिसरों को अधिग्रहण-मुक्त न करे तथा उपभोक्ता सहकारी सोसायटियों को, उन्हें आबंटित परिसरों से बेदखल न करे।

25. जहां तक अधिगृहीत रिहाइशी परिसरों के आबंटितियों का संबंध है उनका संबंध समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों से है तथा अधिगृहीत परिसर भी भिन्न-भिन्न आकार के हैं। अधिकांशतः आबंटितियों का संबंध, मध्य आय वर्ग और निम्न आय वर्ग से है (जिन्हें उसके बाद क्रमशः "म० आ० व०" और "नि० आ० वर्ग" कहा गया है और जिनकी पहचान राज्य सरकार तथा ऐसे वर्गों को मकान आबंटित करने वाले अन्य प्राधिकारियों द्वारा अधिकथित कसौटी के आधार पर की जा सकती है। उनका अधिभोगाधीन परिसर आकार में भी छोटे हैं। यह भी संभव है कि, "म०आ०व०" और "नि०आ०व०" में से कुछ व्यक्तियों ने या तो अपने नाम से अथवा अपनी पत्नी/अपने पति और आश्रितों के नाम से अन्य रिहाइशी परिसर प्राप्त कर लिए हों। इस विनिश्चय के परिणामस्वरूप, "म० आ० व०" और "नि आ० व०" के उन्हीं आबंटितियों पर कठोर प्रहार होगा जिन्होंने इस बीच परिसर अर्जित नहीं कर लिए हैं क्योंकि वे रातोंरात बेघर हो जाएंगे और अपने कुटुंबों के साथ सड़क पर फेंक दिए जाएंगे। राज्य सरकार को चाहिए कि वह रिहाइशी आवास प्रदान करते समय "म० आ० व" और "नि आ० व" के ऐसे व्यक्तियों को अधिमान दे। राज्य सरकार के लिए (क) अपने स्वयं के भूखंडों के आबंटनों में ऐसे व्यक्तियों को पूर्विकता प्रदान करके (ख) महाराष्ट्र नागरिक और औद्योगिक विकास निगम लि० तथा महाराष्ट्र राज्य आवास बोर्ड से यह अपेक्षा करके अथवा उनके साथ इस बात की समुचित व्यवस्था करके कि वे उन प्लाटों और वासों के आबंटन में उन्हें पूर्विकता प्रदान करे जिनका निर्माण किया जा चुका है अथवा जिनका निर्माण करने का विचार है, (ग) उक्त संगठनों से यह अपेक्षा करके कि वे ऐसे आबंटितियों के लिए विशेष रूप से वासों का निर्माण करें, अथवा (ग) किसी अन्य रीति में, जिसे राज्य सरकार उपयुक्त समझे, ऐसा करना संभव होगा। मैं समझता हूं कि राज्य आवास बोर्ड के पास "म०आ०व०" और "नि० आ० व०" के व्यक्तियों को भाड़ा-क्रय आधार पर तथा किराए के आधार पर आबंटित किए जाने के लिए बड़ी संख्या में (लगभग 6000) रिहाइशी परिसर उपलभ्य हैं। चूंकि इन वर्गों में पात्र व्यक्तियों को परिसर उपलब्ध कराने के लिए काफी समय की आवश्यकता होगी। अतः राज्य सरकार को चाहिए कि वह परिसरों को अधिग्रहण-मुक्त न करें और उक्त आबंटितियों को उन परिसरों से तब तक बेदखल न करे जब तक उन्हें अनुकल्पी परिसर न दे दिए जाएं। राज्य सरकार को चाहिए कि वह अधिक से अधिक 31 मई, 1996 से पहले ऐसे परिसर उपलभ्य करा दे।

26. अन्य परिसर बहुमत वाले निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अधिग्रहण-मुक्त किए जा सकते हैं।

27. मैं उपर्युक्त आदेश के अधीन, उक्त रिट याचिकाओं को खारिज करता हूं।

रिट याचिकाएं खारिज की गईं।

अशोक